हिंदी त्रैमासिक
पहचान
देश से हम, हमसे देश

ISSN 2815-8326

वर्ष 4, अंक 1, जुलाई - सितंबर 2025, पृष्ठ संख्या 32

प्रधान संपादक : प्रीता व्यास

आवरण चित्र - डॉ. हेमंत कुमार

प्रेरणा
मैंने
खुद को ही
पुकारा –
और चल पड़ा...
अब मैं –
अकेला नहीं था।
मोहन नागर
कविता चित्र-रोहित रूसिया

हिंदी त्रैमासिक
पहचान
देश से हम, हमसे देश

संस्थापक/ प्रधान संपादक
प्रीता व्यास

सलाहकार संपादक
रोहित कृष्ण नंदन

ले आउट / ग्राफ़िक्स
प्रिया भारद्वाज

कवर पेज
डॉ. हेमंत कुमार

प्रकाशक
पहचान

आकलैंड, न्यूज़ीलैंड

editor@pehachaan.com

डिस्क्लेमर

पत्रिका में प्रकाशित लेख, रचनाएं, साक्षात्कार लेखकों के निजी विचार हैं, उनसे प्रकाशक का सहमत होना अनिवार्य नहीं. रचनाओं की मौलिकता के लिए लेखक स्वयं ज़िम्मेवार है. कुछ चित्र और लेखों में प्रयुक्त कुछ आंकड़े इंटरनेट वेबसाइट से संकलित किए गए हो सकते हैं.

दो शब्द

जीवन में जिनका महत्व सबसे अधिक माना जाता है उनमें प्रथम है माता, फिर पिता और गुरु. जीवन को दिशा देने का काम सर्वप्रथम तो मां ही करती है इसलिए सबसे पहली गुरु भी वही है. क्या आज के समय में माताएं यथेष्ट सम्मान पा रही हैं? कहीं बच्चे ऊंचे स्वर में बात करते हैं, कहीं गाली- गलौच और कहीं प्रतारणा का स्वरूप और भयानक हो जाता है. ये बड़ी विकृत और दुखद स्थितियां हैं.
हिंदुओ की परंपरा के मुताबिक आषाढ़ के शुक्ल पक्ष की पूर्णिमा को गुरु पूर्णिमा मनाई जाती है जो महर्षि वेद व्यास जी की जयंती होती है.

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु:
गुरुर्देवो महेश्वर:।
गुरु:साक्षात् परब्रह्म
तस्मै श्रीगुरवे नम:॥

जयंती तो हम शायद याद रखते हों, मनाते भी हों लेकिन क्या आज गुरु परंपरा का वही सम्मान शेष है? गुरु जो गोविन्द से मिलवा दे, गुरु जो मिल जाए तो जीवन में ना भय शेष बचे ना अंधकार- विकार. सवाल कि क्या आज ऐसे गुरु मिलते भी है? हर और छल, कपट, माया पसरी नज़र आती है. गुरु के भेष में जब कपटी, लोलुप निकलते हैं तो विश्वास आहत होता है. ये दुतरफा ह्रास है यही वजह है कि समाज गर्त में जा रहा है. हमें सच्चे मार्गदर्शन की, वीतरागी सच्चे गुरुओं की भी उतनी ही आवश्यकता है जितनी सच्चे साधकों की है.

निराशाओं के बीच आशा को बचाये रखना ये भी तो गुरु ही सिखाते हैं. इसी आशा को थाम कर हम रचते हैं, बसते हैं, बढ़ते हैं. आप सभी को गुरु पूर्णिमा की शुभकामनाएं, स्वतंत्रता दिवस की बधाई.

"पहचान" अपने चौथे साल में प्रवेश कर रही है. आपका साथ शक्ति है. जुड़िये और जुड़े रहिये-

प्रीता व्यास

इस अंक में ...

पाठकीय प्रतिक्रियाएं 05

आलेख

क्या विंध्य की कोलारियन और झारखंड की मुंडारी संस्कृति में कोई साम्य है? (बाबूलाल दाहिया) 6-8

भारत की संस्कृति से भिन्न है अमेरिका का महिला अधिकार दिवस (शरद कोकास) 9-11

आधा 'न्' या 'म्' के बदले अनुस्वार (धीरेंद्र प्रताप सिंह) 12

संस्मरण

मिट्टी के बदन में हैं सूरज के नसब वाले (डॉ. भूपेंद्र बिष्ट) 13

अधीरता के कुछ प्रसंग (मंगलेश डबराल) 14

जिन्होंने मुझे रौशनी दिखाई (डॉ. हेमंत कुमार) 15-17

लोक साहित्य

सैंया जी में सब रंग बेहतर (गीत चतुर्वेदी) 18

जुहो? जुहो? जुहो ? (प्रीता व्यास) 19

व्यंग्य

समय काटे नहीं कटता (डॉ. मुकेश असीमित) 20-21

गीत

देश को नमन (विंध्यकोकिल भैयालाल व्यास) 22

मजबूरी में (मोहन पुरी) 23

मां (रोहित कृष्ण नंदन) 24

ग़ज़ल

सतपाल ख़याल 25

बलवान सिंह "आज़र" 26

डॉ. प्रेम भटनेरी, आदिल फ़रहत 27

ख़ुशबीर सिंह शाद 28

बाल कविता

पहेलियां (डॉ. कमलेन्द्र कुमार) 29

पुस्तक समीक्षा

समीक्षा: अनुज मिश्रा 30-31

पाठकीय प्रतिक्रियाएं

टेलीविजन और इंटरनेट, जीवन पर इनका प्रभाव बहुत बढ़ता जा रहा है, ऐसे में हिंसा, भय, अपशब्दों की भरमार वाले इस जाल में आपकी पत्रिका कमल का फूल है जानो. बहुत सुलझी हुई, जानकारी से भरपूर सामग्री. मुझे सभी लेख पसंद आये. और कहानी सुधा गोयल जी की तो बिलकुल आज का सच है. घर-घर यही हाल है. मधु सक्सेना जी की कविता और अन्य कविताएं भी बहुत अच्छी हैं.

करमवीर सिंह, न्यूज़ीलैंड

आहाहा, कवर पेज, बिलकुल जुड़ता है जी अपनी पहचान से. आपकी पत्रिका का नाम तो इसके कवर पेज से ही सिद्ध हो जाता है. सभी रचनाएं स्तरीय, सुंदर साज-सज्जा. पूरी टीम को साधुवाद.

दर्शन बहाना, न्यूज़ीलैंड

"बुंदेलखंड के विवाह लोकगीत" सुश्री वंदना अवस्थी दुबे का लिखा ये लेख पढ़ कर अच्छा लगा. मैं तेरह वर्षों से यू. एस. में हूं लेकिन मेरा मायका और मेरी ससुराल दोनों बुंदेलखंड में हैं. लेख ने मुझे वहीं ले जा कर खड़ा कर दिया किसी आंगन में जहां लगुन लिखी जा रही है या हल्दी चढ़ रही है या किसी नेग की तैयारी हो रही है. उम्मीद है बुंदेलखंड से जुड़े और भी लेख मुझे पढ़ने को मिलते रहेंगे.

कानन अभिनव गौतम, यू एस ए

आपकी पत्रिका का जब नया अंक आता है तो पढ़ कर लगता है कि जैसे मैं विदेश में नहीं अपने भारत में बल्कि अपने घर-गांव में कहीं हूं. कविताएं सभी बहुत पसंद आईं. सुनील श्रीवास्तव जो की कविता ने तो गांव की हर बात जीवित कर दी. मैं जब स्कूल में था अपने ननिहाल जाया करता था जो कि बिहार का एक छोटा सा गांव है.

प्रबल सिन्हा, भारत

"पहचान" भारत की शान है और दुनिया के हर कोने तक भारत की आन-बान बनाये रखती है. मैं इसे हमेशा पढ़ती हूं. धर्मयुग, निहारिका, सारिका आदि पत्रिकाओं के स्तर की है और उन दिनों की याद दिलाती हैं.

बीना वाचानी, भारत

इंटरनेट का ज़माना, सब कुछ ऑन- लाइन. ढेरों पत्रिकाएं अब ऑन लाइन उपलब्ध हैं, उस भीड़ में अपनी अलग पहचान बनाती दिख रही है आपकी पत्रिका मैडम प्रीता व्यास जी. मैंने सभी अंक तो नहीं पढ़े लेकिन जो दो- तीन पढ़े मुझे बहुत अच्छे लगे. ज्ञान से अधिक महत्वपूर्ण और मूल्यवान और कुछ नहीं और आपकी पत्रिका उसे ही जैसे गागर में भर के सामने रख देती है. साधुवाद.

केसर सक्सेना, अमेरिका

किसी कोने से
छुपा हुआ कोई शब्द उठेगा
पहुंचेगा उसका कंपन
कई- कई कानों तक
बढ़ेगा, विराट होगा
और अनेक लोगों की
"पहचान" बनेगा.
आपकी पत्रिका के लिए ये एक छोटी सी अपनी कविता भेज रही हूं शुभकामनाओं के साथ.

अवधि भटनागर, मॉरीशस

क्या विंध्य की कोलारियन और झारखंड की मुंडारी संस्कृति में कोई साम्य है?

बाबूलाल दाहिया

जिस प्रकार झारखंड के मुख्यमंत्री हेमंत शोरेन ने बड़े-बड़े धुरंधर राजनीतिज्ञों के तरह-तरह के फरेबों को धूल चटा कर अपने स्वयं के बूते वहां सरकार बनाई है तो वर्ग सहानुभूति के नाते यहां के भी तमाम आदिवासियों में खुशी की लहर दौड़ना स्वाभाविक है.

मध्य प्रदेश में तो सर्व विदित ही है कि यहां सत्ता तक पहुंचने के लिए sc, st अथवा obc वर्ग के नेताओं को किसी न किसी पार्टी की कठपुतली बनकर अपनी चोटी उनके हाथ देने से ही सत्ता सुख मिलता है. वही स्थिति पहले झारखंड में भी थी परंतु यह शायद पहली बार हुआ है जब वहां के आदिवासी समुदाय के किसी नेता ने लालू, मुलायम सिंह के तर्ज पर खुद अपने बूते चुनाव लड़ा और सहयोगियों तक को सफलता दिलाई.

कुछ कोल समुदाय के दोस्तों ने आज मुझसे प्रश्न किया है कि " दाहिया जी, एक लेखक के नाते इसमें आपका क्या कथन है? हमारी यहां की कोलारियन संस्कृति एवं मुंडारी में कितनी साम्यता है?" विगत तीन वर्ष पहले जब मैंने कोल आदिवासी समुदाय का समग्र सांस्कृतिक सर्वेक्षण किया था तो बहुत सारी बातें निकल कर आईं थीं. वैसे हमारे मध्य प्रदेश में जनजातियों के दो वंश मूल हैं. पहला आस्ट्रिक मुंडा समूह और दूसरा द्रविड़ मूल. बाकी आदिवासी तो द्रविण मूल के ही हैं पर विंध्य व महाकौशल के कोल एवं बैतूल के कोरकू इसी आष्टिक मुंडा समूह के माने जाते हैं जिनकी बोली कभी कोलारियन रही होगी. पर अब उसका नाम भी कोलारियन के बजाय मुंडारी हो गया है. मेरे पूर्व के तमाम विद्वानों के सर्वेक्षण से यही बात निकल कर आई है कि कोलारियन मुंडा समूह में काफी साम्यता है.

भाषाई दृष्टि से भी देखा जाय तो भारत में चार भाषाई समूह ही हैं जिनके अंतर्गत अन्य समस्त भाषाएं आती हैं. वे हैं-

1. आष्टिक
2. तिब्बती
3. द्रविड़
4. भारोपीय

पर कुछ विद्वानों का मत है कि 1854 में मूलर नामक एक विद्वान ने आष्टिक वर्ग की कोलरियन भाषा को मुंडारी इसलिए लिख दिया था कि (कोल) संस्कृत भाषा का शूकरार्थी नाम था इसलिए वह उन्हें अटपटा सा लग रहा था. जबकि यहां के प्राचीनतम निवासी कोल्हान क्षेत्र से आए कोल के अर्थ और बाद में यहां अस्तित्व में आई भारोपियन भाषा के उस नाम से कोई दूर-दूर का नाता भी नहीं था और पहले तो यहां की कोलारियन भाषा ही थी.

पर कुछ विद्वानों का मत है कि 1854 में मूलर नामक एक विद्वान ने आष्टिक वर्ग की कोलरियन भाषा को मुंडारी इसलिए लिख दिया था कि (कोल) संस्कृत भाषा का शूकरार्थी नाम था इसलिए वह उन्हें अटपटा सा लग रहा था. जब कि यहां के प्राचीनतम निवासी कोल्हान क्षेत्र से आए कोल के अर्थ और बाद में यहां अस्तित्व में आई भारोपियन भाषा के उस नाम से कोई दूर-दूर का नाता भी नहीं था और पहले तो यहां की कोलारियन भाषा ही थी.

यहां कोलों को गौटिया कहा जाता है जो मुखिया का समानार्थी है. लेकिन मुंडा का अर्थ भी झारखंड में मुखिया ही होता है. इसलिए मुंडा और कोल में अब भी काफी समानता है. कोलों का प्रदुर्भाव तत्कालीन बंगाल के सिंहभूमि यानी कि वर्तमान (उड़ीसा,झारखंड) के सीमा वाले भू-भाग कोल्हान से माना जाता है. यह वही कोल्हान है जहां के अभी 24 निर्वाचन क्षेत्र से चम्पई शोरेन अपने प्रभाव का दावा कर रहे थे और कई बार चुनाव के समय वह नाम टीवी में आता भी रहा है. प्राचीन समय से उसी कोल्हान क्षेत्र से आया कोल समुदाय मध्य प्रदेश के तेईस और उत्तर प्रदेश के नौ जिलों में पाया जाता है. रीवा,सतना,सीधी, उमरिया, कटनी, जबलपुर आदि सात-आठ जिलों में उसकी संख्या सर्वाधिक है.

आज भले ही यहां इनकी कोई अपनी भाषा न हो पर उत्तर-मध्य भारत के बहुत बड़े भू-भाग में बसने के कारण प्राचीन समय में कोलों की उसी प्रकार अपनी एक अलग भाषा रही होगी जैसे तमाम जातियों के बीच बस कर भी बैतूल एवं छिंदवाड़ा का कोरकू समुदाय अपनी अलग भाषाई पहचान बनाए हुए है. झारखंड में बहुत बड़ी संख्या होने के कारण वहां तो मुंडाओं की भाषा मुंडारी पूरी तरह मौजूद है एवं उस पर वहां के कुछ विश्व विद्यालयों में शोध भी हो रहे हैं. लेकिन मध्य प्रदेश के जिन जिलों में कोल समुदाय सर्वाधिक संख्या में पाया जाता है वहां वे अपनी भाषा ही भूल चुके हैं. यही कारण है कि रिश्तेदारियों में भी वे अन्य समुदायों की तरह ही अपने संबंधियों को "भाई, दीदी, दादा, दाई, बाबा, फूफू, फूफा,भउजी, काकी, बइया, बहनोई, मामा, काका, मौसी, मौसिया" आदि कह कर ही संबोधित करते हैं. इनमें कितने शब्द उनकी कोलारियन भाषा के हैं और कितने बाहर से लाए लोगों के हैं? यह बहुत बड़े शोध का विषय है. पर इसके बावजूद भी जब वे अपने ससुर, सासू या बहन के ससुर-सासू से मिलते हैं तो अन्य समुदायों से अलग (राउत या रउताइन) कह कर ही उनका संबोधन होता है. इस तरह उनकी कोलारियन भाषा का वह अवशेष कुछ न कुछ संदेश दे ही जाता है. गौटिन, गौटिया तो कोलारियन भाषा के शब्द ही हैं.

कोल अपने समधी से अन्य समुदायों के पलागो या नमस्कार, प्रणाम के बजाय आज भी (जोहार) कहकर मिलते हैं. अस्तु यह भी उनकी पुरानी कोलारियन भाषा का ही अवशेष लगता है. क्योकि यही अभिवादन झारखंड में भी पाया जाता है. पहले कई कार्यशालाओं में तो झारखंड के तमाम मित्र जब मुझसे मिलते थे तो यही अभिवादन किया करते थे. बाद में यहां कोलों की भाषा के बदलाव का कारण शायद यह हो सकता है कि कोल समुदाय अपनी अधिक संख्या वाले जिलों के घने जंगली क्षेत्र के बजाय उसके किनारे वाले क्षेत्र में अपना रहवास बनाया और लंबे समय तक जंगल की लकड़ी लाकर किसी कस्बे में बेंच या फिर किसानों की खेती में सहयोगी की भूमिका से अपनी अजीविका चलाई. शायद यही कारण है कि तमाम जातियों के नजदीकी संपर्क के कारण कोलों ने अन्य समुदायों की भाषा भी अपना ली. इस तरह इनकी अपनी प्राचीन बोली भाषा तो स्पष्ट नहीं है?

पर हो सकता है यहां के प्राचीनतम रहवासी होने के कारण वर्तमान बुंदेली, बघेली या कटनी में बोली जाने वाली बघेली बुंदेली का मिला-जुला रूप पचेली में कुछ उसके अवशेष हों? क्योंकि बघेल या बुंदेला राजपूत खुद तो बाहर से आए थे पर अपनी भाषा लेकर वहां से नही आये थे और इसी तरह बांदा की गहोरी के मूल में भी इनकी बोली के कुछ अवशेष हो सकते हैं. फिर भी झारखंड के मुंडा और यहां के कोलारियन संस्कृति में बहुत कुछ साम्यता आज भी है.

भारत की संस्कृति से भिन्न है अमेरिका का महिला अधिकार दिवस

(28 अगस्त विश्व महिला अधिकार दिवस)

पंकज चतुर्वेदी

अमेरिका में लोकतंत्र का प्रारंभ पहले राष्ट्रपति की नियुक्ति अर्थात सन 1781 से माना जाता है, लेकिन विडंबना है कि खुद को अत्याधुनिक कहने वाले इस विशाल देश में सन 1920 तक वहां की आधी आबादी अपने मूलभूत अधिकारों से वंचित थी, ना वे मतदान कर सकती थीं, ना ही निर्वाचन में हिस्सा ले सकती थीं, उनके काम के घंटों व पारिश्रमिक के मामले में भी भेदभाव था. लगभग 72 साल के लंबे संघर्ष के बाद संयुक्त राज्य अमेरिका के तीन चौथाई राज्य इस बात पर सहमत हुए कि औरतें भी पुरुष के बराबर की ही इंसान हैं. 26 अगस्त 1920 को अमेरिका की संसद या सीनेट ने सभी राज्यों से प्राप्त सहमति के बाद संविधान में 19वां संशोधन कर औरतों को पुरुष के समान अधिकार देने की शुरुआत की. इसी दिवस की याद में सन 1971 से महिला समानता दिवस मनाया जाने लगा. भारत में अमेरिका/यूरोप के देशों के प्रचलनों की नकल कर खुद को आधुनिक सिद्ध करने को गर्व से देखा जा सकता है, सो पहले से ही सुविधा-संपन्न, सक्षम,कुछ महिलाएं यहां भी इस दिवस को मनाती हैं. यह भी सही है कि समानता की गूंज ना तो संसद में सुनाई देती है और ना ही दूरस्थ उन इलाकों में जहां अभी भी बेटी के जन्म पर नाखुशी होती है.

हालांकि अमेरिका में इस बिल का पास होना भी बेहद टकराव पूर्ण था. टेनेसी राज्य के दस्तावेजों का एक पैकेज वाशिंगटन में सुबह 4 बजे के आसपास ट्रेन से पहुंचा था. इसमें राज्य विधानमंडल के आधिकारिक अनुसमर्थन के दस्तावेज थे. 18 अगस्त, 1920 को टेनेसी संशोधन को समर्थन करने वाला 36 वां राज्य कैसे बना, यह अपने आप में एक कहानी थी. कांग्रेस ने एक साल पहले प्रस्तावित संशोधन पारित किया था, और इसे राष्ट्रपति वुडरो विल्सन का समर्थन प्राप्त था.

1920 के मध्य तक, 35 राज्यों ने संविधान संशोधन की पुष्टि के लिए मतदान किया था, लेकिन चार अन्य राज्यों- कनेक्टिकट, वर्मोंट, उत्तरी कैरोलिना और फ्लोरिडा ने विभिन्न कारणों से प्रस्ताव पर विचार करने से इनकार कर दिया, जबकि शेष राज्यों ने संशोधन को पूरी तरह से खारिज कर दिया था. इसलिए, टेनेसी युद्ध का मैदान बन गया ताकि संशोधन की पुष्टि के लिए आवश्यक तीन-चौथाई राज्यों हो सकें. 24 वर्षीय विधायक हैरी टी बर्न को संशोधन के खिलाफ मतदान करने के लिए राजी किया गया था, लेकिन वे अपनी मां के अनुरोध को नहीं टाल सकीं और एन वक्त पर उन्होंने संशोधन के समर्थन में वोट दे कर इतिहास बदल दिया.

भारत में औरतों को संवैधानिक संस्थओं में समान स्थान बनाने को इतना संघर्श नहीं करना पड़ा. हमारे संविधान की मूल भावना में ही हर तरीके के समानता का अधिकार है. शायद इसका कारण देश की संस्कृति भी है, जहां आस्था-स्थलों पर पुरुष देवताओं के ठीक बगल में महिला देवियों की समान ऊंचाई की प्रतिमाओं की स्थापना, उनकी एक समान पूजा करने की प्राचीन परंपरा है. भारत में स्त्री को शक्ति का रूप बताने के कई आख्यान हैं.

भारत जिस ब्रिटेन का उपनिवेश था, वहां महिलाओं को मतदान का अधिकार 1929 में मिला, जबकि भारत में स्वतंत्रता के पहले कदम से ही महिलाओं को चुनाव लड़ने या मतदान करने का समान अधिकार था. हमारी पहली निर्वाचित संसद(1952) में 24 महिला सांसद थीं. हमारे महज 70 साल के संसदीय अतीत में देश ने एक प्रधानमंत्री, एक राष्ट्रपति, दो लोकसभा अध्यक्ष सहित लगभग सभी प्रमुख पदों पर महिलाओं को विभूषित होते देखा है. जाहिर है कि जिन मसलों को ले कर अमेरिका ने 26 अगस्त को महिला समानता दिवस मनाने की घोषणा की, वह भारत में प्रासंगिक नहीं हैं, फिर भी भारत में यह मसला अपने ही विरोधाभास का शिकार है.

तस्वीर इतनी उजली भी नहीं हैं. संसद में ना जाने कितने विवादास्पद मसले व बिल लगभग एकमत से इस बार पास हो गए लेकिन कोई दो दशक से लटका महिला आरक्षण बिल कहीं ठंडे बस्ते में हैं. हमनें स्थानीय निकायों में तो महिलाओं को 50 प्रतिशत आरक्षण दे कर उनके यहां से नेतृत्व की बड़ी व औजस्वी पीढ़ी को लिए रास्ता खोल दिया, लेकिन विधान सभा या लोकसभा में तैंतीस प्रतिशत आरक्षण के मसले पर सभी मौन हैं

12 सितंबर 1996 को पहली बार संसद में प्रस्तुत महिला आरक्षण बिल पर या तो चर्चा होती नहीं, जब होती है तो वह हंगामे का शिकार हो जाता है. कहने की जरूरत नहीं है कि बीते कई दशकों के दौरान राजनीतिक दलों की सीमाओं से परे, महिला मंत्रियों ने बनिस्पत बेहतर काम किए हैं और उन पर आरोप भी कम लगे. इसके बावजूद मौजूदा लोकसभा में कुल 543 में से मात्र 66 अर्थात महज 12 प्रतिशत ही महिला सांसद हैं. आज आवश्यकता है कि संसद व विधानसभाओं में भी पूर्व निर्धारित अनुसूचित जाति/जनजाति आरक्षण के साथ महिलाओं को 33 प्रतिशत आरक्षण मिले ताकि समाज के सभी वर्ग से महिला सांसद चुन कर देश की आवाज बनें.

जान कर आश्चर्य होगा कि भारत की तुलना में बेहद पिछड़े कहे जाने वाले कई देशों में औरतों के लिए आरक्षण का प्रावधा है. अर्जेंटीना में 30 प्रतिशत, अफगानिस्तान में 27 प्रतिशत, पाकिस्तान में 30 प्रतिशत एवं बांग्लादेश में 10 प्रतिशत महिलाओं के लिए सुरक्षित हैं. यूरोप के कई देशों में राजनीतिक दल हैं जैसे कि - डेनमार्क (34 प्रतिशत), नार्वे (38 प्रतिशत), स्वीडन (40 प्रतिशत), फिनलैंड (34 प्रतिशत) तथा आइसलैंड (25 प्रतिशत) आदि. भारत में पिछले विधान सभा चुनाव में ओड़िशा में बीजू जनता दल ने 33 प्रतिशत आरक्षण का फार्मूला लागू किया व वह सफल भी हुआ. हमारे देश में जिन स्थानों पर अभी महिलाओं के लिए समान अधिकार के लिए कड़ाई से काम करना है, उसमें शिक्षा प्रमुख है. भारत में 74 प्रतिशत साक्षरता दर की तुलना में महिला साक्षरता दर 64 प्रतिशत है. महिलाओं की आर्थिक भागीदारी 42 प्रतिशत हैं, जबकि विकसित देशों में यह 100 प्रतिशत पहुंच रही हैं. कामकाज में भारतीय महिलाओं की भागीदारी मात्र 28 प्रतिशत हैं, जबकि हमारे पड़ोसी बांग्लादेश में भी यह 45 प्रतिशत है.

यह हमारे लिए गौरव की बात है कि अब बच्चियों को स्कूल भेजने के लिए समाज सकारात्मक है, सरकारी ही नहीं, निजी संस्थानों में महिलाएं शीर्ष पदों पर हैं. लड़कियों को जन्म के समय ही मार देने के लिए कुख्यात हरियाणा में प्रमुख सचिव, अतिरिक्त प्रमुख सचिव सहित लगभग सभी अग्रिम प्रशासनिक पदों पर इस समय महिलाएं सुशोभित हैं. परंतु यह भी सत्य है कि जिन समाजों में अभी तक मध्य वर्ग विकसित नहीं हो पाया, वहां घर के भीतर शिक्षा, स्वास्थ्य, पोषण, कपड़े पहनने, घर से बाहर निकलने जैसी बातों में बच्चियों के साथ भेदभाव होता है. यौन अत्याचार, एसिड अटैक, गर्भ में बच्ची की हत्या, बाल विवाह और शारीरिक शोषण जैसे कुछ ऐसे मसले हैं जहां किसी कानून की जगह समाज को संवेदनशील बनाने का सही समय हमारे लिए आ गया है. भारत में 2016 में मानव तस्करी के 15 हजार मामले दर्ज़ किए गए जिनमें से दो तिहाई महिलाओं से जुड़े थे.

भारत में महिला समानता के मुद्दे, समाधान, सरोकार अमेरिका, यूरोप से बहुत अलग हैं. हमारा सामाजिक, आर्थिक व लोकतांत्रिक ताना-बाना उनसे बेहतर व जुदा है. जाहिर है हमें अपने किसी चरित्र- अहिल्याबाई, रानी दुर्गावती, ज्योतिबा फुले, कस्तूरबा में से किसी के जन्मदिन पर महिला समानता दिवस अपने मुद्दों के साथ मनाने पर विचार करना चाहिए.

आधा 'न्' या 'म्' के बदले अनुस्वार

धीरेंद्र प्रताप सिंह

हिंदी भाषा में आधा 'न्' या 'म्' के बदले अनुस्वार या कहें बिंदी का प्रयोग धड़ल्ले से होने लगा है, लेकिन इसके प्रयोग में पर्याप्त सावधानी रखने की ज़रूरत है.

अभी हिंदी की एक चर्चित लेखिका ममता कालिया का लिखा हिंदवी वेबपोर्टल पर प्रकाशित एक वाक्यांश देखा. वाक्यांश है, "एकांत में जो भी तंमयता पति-पत्नी के बीच जन्म लेती, दिन के उजाले में उसकी गर्दन मरोड़ दी जाती." (बोलने वाली औरत: ममता कालिया). इस वाक्यांश में 'तन्मयता' को 'तंमयता' लिखा गया गया था. जो कि पूरी तरह गलत है. दरअसल, आधा 'न्' या 'म्', अनुस्वार यानी बिंदी में तभी परिवर्तित होगा, जब वह अपने वर्ग के शब्दों के साथ आयेगा.

हिंदी वर्णमाला में स्वर, अनुस्वार, अनुनासिक के अलावा व्यंजनों में वर्गीय दृष्टि से स्पर्श व्यंजनों की संख्या 5 वर्गों में बांटकर कुल 25 बताई गई है, जिन्हें पंचमाक्षर कहा जाता है. अंतस्थ, ऊष्म, संयुक्त और द्विगुण वर्ण भी व्यंजन के ही अंतर्गत आते हैं. लेकिन, इन वर्गों में पंचमाक्षर नहीं केवल चार वर्ण ही होते हैं. द्विगुण वर्ग में केवल दो ही वर्ण होते हैं. व्यंजनों में वर्गीय दृष्टि से स्पर्श व्यंजन के पंचमाक्षर इस प्रकार बताए गए हैं-

क वर्ग - क, ख, ग, घ, ङ
च वर्ग - च, छ, ज, झ, ञ
ट वर्ग - ट, ठ, ड, ढ, ण
त वर्ग - त, थ, द, ध, न
प वर्ग - प, फ, ब, भ, म

तो कहना यह है कि आधा 'न्' यदि 'त' वर्ग और आधा 'म्' यदि 'प' वर्ग के शब्दों के साथ जुड़ा है, तभी वह अनुस्वार में परिवर्तित होगा.

उदाहरण के लिए -

गान्धी = गांधी
शैलेन्द्र = शैलेंद्र
धीरेन्द्र = धीरेंद्र
सम्पूर्ण = संपूर्ण

'गान्धी', 'शैलेन्द्र', 'धीरेन्द्र' आदि में आधा 'न्', 'ध' एवं 'द' के साथ आया है और 'न्', 'ध' एवं 'द' तीनों 'त' वर्ग के शब्द हैं, इसलिए इन शब्दों के साथ आधा 'न्' की जगह अनुस्वार या बिंदी का प्रयोग किया जा सकता है. 'सम्पूर्ण' में आधा 'म्' प वर्ग के साथ जुड़ा है, इसलिए यहां आधा 'म्' की जगह 'स' पर अनुस्वार यानी बिंदी का प्रयोग किया जा सकता है. 'तन्मयता' में आधा 'न्', 'म' के साथ जुड़ा है और 'म', 'प' वर्ग का है, इसलिए यहां आधा 'न्' को अनुस्वार में नहीं बदला जा सकता.

यहां यह भी उल्लेखनीय है कि आधे वर्णों के लिए अनुस्वार का प्रयोग केवल स्पर्श व्यंजन यानी पंचमाक्षर वर्गों के वर्णों के साथ ही किया जाता है. यद्दपि इसके अलावा एक परिस्थिति में और आधे अक्षर को अनुस्वार में बदला जा सकता है, वह यह कि यदि किसी शब्द का अंतिम वर्ण आधा हो तो उसको अनुस्वार में बदला जा सकता है। उसके लिए कोई ज़रूरी नहीं कि वह शब्द अपने पंचमाक्षर वर्ग का ही हो। जैसे, स्वयम् = स्वयं.

मिट्टी के बदन में हैं सूरज के नसब वाले

डॉ. भूपेंद्र बिष्ट

हिंदी में पचास के दशक में प्रकाश पंडित के संपादन में उर्दू शायरों की एक श्रृंखला प्रकाशित हुई थी और फिर 1986 में नरेंद्र नाथ के संपादन में पाकिस्तानी उर्दू शायरी की सीरीज. इन सबने हिंदी पाठकों का खूब ध्यान खींचा और लगभग सभी प्रकाशकों ने ग़ज़ल के संकलन भी प्रकाशित किए. रवीन्द्र कालिया ने तो जोरदार टिप्पणी भी की है. ग़ज़ल की रवायत ही कुछ ऐसी है कि हर बात, वह चाहे कितनी ही गहरी क्यों न हो, प्रिय या प्रीतम के ज़रिए ही कही जाती है और कि जटिल रहस्यवादी चिंतन को सहज सरल ढंग से अभिव्यक्त करना ग़ज़ल में ही संभव है.

इस क्रम में आज कुछ मुख्तलिफ अंदाज़ से फलसफे हयात की बात करने वाले बड़े कलमकार के बारे में, जो बहर, काफ़िए और रदीफ के क़फ़स में ही फनकारी न कर आम आदमी के सपने को बयां करते हैं- जनाब जाज़िब कुरैशी.

उनसे कहा गया आप नौजवान हैं मगर बूढ़ों की तरह लिखते हैं, अपने जज्बों और तजुर्बों को लिखा करें और अगर संजीदगी से शायरी करनी है तो कुछ लिखना-पढ़ना भी सीखिए. ये शौकत हाशमी साहब रहे जो जाज़िब कुरैशी से मुखातिब थे.

जाज़िब कुरैशी नाम है उस सुखनवर का जो पढ़ गए:

"तेरी खुशबु में जलना चाहता हूं
मैं पत्थर हूं, पिघलना चाहता हूं.
शिकस्ता आयनों का अक्स हूं मैं
चट्टानों को कुचलना चाहता हूं."

असल नाम मुहम्मद साबिर था जाज़िब का (6 अगस्त 1940 - 21 जून 2021). खालाजाद भाई अब्दुल वाहिद के साथ छुटपन में ही लखनऊ के हर मुशायरे के लिए लद लिया करते. पर उनकी शायरी 1953 के दौर में लाहौर से शुरू होती है. वहीं के एक रिसाले में उन्हें काम करते उस्ताद शाकिर देहलवी की शागिर्दगी नसीब हो गई. इसी का नताइज कहा जाए जब पंजाब में फैज़, नसीर काज़मी, मुनीर नियाज़ी, ज़फ़र इक़बाल, शिकेब ज़लाली, जेहरा निगाह और साहिर सिद्दीकी सरीखे कद्दावरों का नाम चल रहा था तो जाज़िब भी सुने जाने लगे.

1962 में जाज़िब लाहौर छोड़कर कराची आ गए और इधर उर्दू अदब में एम. ए. सनद के वास्ते कराची यूनिवर्सिटी में दाखिला भी ले लिया पर रुझान कुछ दूसरी जानिब था. बीबी शहनाज़ के कहने पर एक फिल्म " पत्थर के सनम " भी 1967 में बनाना शुरू कर दी. सात साल लगे इस मूवी को बनते और रिलीज़ होने में. फिल्म कुछ कमाल न कर सकी पर दोस्तों की इनायत के चलते आपका एपॉइंटमेंट हैदराबाद रीजन के मीरपुर ख़ास में बतौर लेक्चरर फिर से हो गया, गोया उनको अपनी पहली लेक्चररशिप वाली जिन्ना कॉलेज की नौकरी "पत्थर के सनम" के कारण तब छोड़नी भी पड़ी थी.

मीरपुर ख़ास का उनका वक्त अच्छा गुजरा. उनकी किताबें 'पहचान' और 'शनासाई' यहीं शाया हुए. पाकिस्तान में ऊंची क्लासेज के लिए उनके आलोचनात्मक लेखों का मजमुआं "मैंने ये जाना" रेकमेंडेड भी है.

अधीरता के कुछ प्रसंग

मंगलेश डबराल

पाब्लो पिकासो की आख़िरी पत्नी और चित्रकार फ्रांस्वा ज़िलो ने अपने संस्मरणों की किताब 'लाइफ विद पिकासो' में लिखा है कि एक दिन पिकासो अपने गहरे मित्र और जाने-माने चित्रकार आनरी मातिस के घर में बैठे थे. उनकी रसोई में एक भेड़ पकाई जा रही थी. पिकासो ने पूछा- "तो आज भेड़ पक रही है तुम्हारे यहां? पक गयी है क्या?"
मातिस ने कहा- "अभी पकी नहीं."
भेड़ के पकने की खुशबू रह-रह कर पिकासो के नथुनों में प्रवेश कर रही थी. दो मिनट बाद वे मातिस से बोले- "ज़रा देख कर आओ. पक गयी होगी."
मातिस ने भावहीन तरीके से कहा- "पूरी नहीं पकी है."
दो मिनट बाद पिकासो फिर बोले- "भई, अब तुम देख कर ही आओ. कहीं ज्यादा न पक जाए.
मातिस ने पिकासो की अधीरता की अनदेखी करते हुए कहा-"अभी कुछ कसर बाकी है."
*

कहते हैं ऐसी ही बेसब्री और बेचैनी महान वैज्ञानिक अल्बर्ट आइंस्टाइन में भी वायलिन के बारे में थी. वे वायलिन बजाते थे निहायत अधकचरे ढंग से. लेकिन वायलिन वादन की सभाओं में वे अपना हाथ आजमाने के लिए आतुर हो उठते और संगीतकार भी उनका मान रखने के लिए वाद्य उनके हाथ में दे देते. दो-तीन मिनट बजाने के बाद आइंस्टाइन संतुष्ट होकर बैठ जाते, लेकिन पांच मिनट बाद ही फिर अपनी सीट से उठकर कहते- "क्या थोडा सा और बजा सकता हूं?" बार-बार सुर छेड़ने के लिए मचल उठने की उनकी यह आदत कभी गयी नहीं. इस ढंग से कुछ संगीत सभाओं को बर्बाद करने का श्रेय भी उन्हें दिया जाता है.
*

यह अधीरता,और बेचैनी बहुत प्रिय लगती है. महान लोगों की बौड़म बेसब्री. महानता की कोई फ़िक्र, उसका कोई मुगालता नहीं है, फिर भी महान लोगों की एकाधिक खब्तें और आतुरताएं नक़ल कर ली जाएं तो क्या हर्ज़! सो आज सुबह जब संयुक्ता मूंग के पकौड़े तलने जा रही थी तो पांच मिनट बाद ही मैं अधीर हो उठा. रसोई में जाकर पूछा- "पकोड़े बन गए?"
उसने कहा- "अरे, अभी कहां, सामान तैयार कर रही हूं.
कुछ ही वक़्त बीता था कि फिर से दरयाफ्त की- "बन गए?"
"अभी नहीं. तेल गरम हो रहा है अभी", उसने कहा.
चीज़ें अनुपस्थित होने के बावजूद अपनी गंध, रंग, स्पर्श, स्वाद आदि भेजती रहती हैं. जब मुझसे रहा नहीं गया तो फिर से रसोईं में जाकर कहा- "अभी भी नहीं तैयार हुए."
संयुक्ता ने कहा- "बस, थोड़ी ही देर में."
*

अधीरता के प्रतिवाद के तौर पर एक किस्सा यह भी है कि एक बार जवाहर लाल नेहरू ने कुछ दोस्तों को दावत पर बुलाया. जब मेज़ पर चिकन परोसा जाने लगा तो मेहमान बेचैन हो उठे. नेहरू ने चुटकी ली- "भई, कुछ सब्र कीजिये. सभी मुर्गे मरे हुए हैं. वे उड़ कर कहीं नहीं जायेंगे."

जिन्होंने मुझे रौशनी दिखाई

(शिक्षक दिवस पर अपने सभी गुरुजनों को नमन)

डॉ. हेमंत कुमार

हर व्यक्ति के जीवन में कभी न कभी कोई न कोई ऐसा शख्स जरूर आता है जो उसकी पूरी जीवन धारा या पूरा जीवन दर्शन ही बदल देता है. वैसे तो इस बदलाव का प्रेरक कोई भी हो सकता है, मां-पिता, भाई-बहन, मित्र,शिक्षक यहां तक कि कोई अनजान व्यक्ति भी. लेकिन अक्सर बदलाव की इस प्रेरणा में शिक्षकों का बहुत बड़ा योगदान रहता है क्योंकि कोई भी व्यक्ति अपने जीवन का सबसे सुनहरा यानि बचपन का समय दो ही लोगों के साथ सबसे ज्यादा बिताता है- वो हैं मां-पिता या फ़िर शिक्षक. स्कूल के समय के पहले और बाद का सारा समय अपने माता-पिता के साथ और स्कूल का समय शिक्षक के साथ. इन्हीं लोगों के द्वारा सिखाई गई बातें बच्चे के पूरे जीवन को प्रभावित करती हैं.

अगर मैं खुद अपने शिक्षकों की बात करूं तो मेरे जीवन को बदलने वाले दो शिक्षक हैं. पहले स्व. डा. अश्विनी कुमार चतुर्वेदी 'राकेश' और दूसरे स्व. डा. रघुवंश. मेरा सौभाग्य कि मैं इलाहाबाद यूनिवर्सिटी में दोनों ही शिक्षकों का छात्र रहा हूं. डा. राकेश चतुर्वेदी जी ने मुझे साहित्य लेखन की ओर प्रेरित किया और डा. रघुवंश जी ने मुझे जीवन में साहस, मेहनत और ईमानदारी का पाठ पढ़ाया.

पहले मैं बात करूंगा डा. राकेश चतुर्वेदी जी की. बात लगभग 1976 की है. मैंने बस इलाहाबाद यूनिवर्सिटी में बी.ए. में दाखिला लिया ही था और दूसरे छात्रों की ही तरह मेरा भी मकसद बी.ए. करके प्रतियोगी परीक्षाओं की तैयारी करना था. ड़ा. राकेश चतुर्वेदी जी मुझे हिंदी में भाषा विज्ञान पढ़ाते थे. क्लास शुरू होने पर पहले दिन सबसे उन्होंने औपचारिक परिचय लेना शुरू किया. मेरा भी नंबर आया तो मैंने अपना नाम बता दिया. उन्होंने पूछा कि "हिंदी पढ़ने के अलावा कभी कुछ लिखा भी है?" (ये प्रश्न वो सबसे पूछ रहे थे पर सभी का जवाब नकारात्मक था.) मैंने यूं ही कह दिया कि हां कहानियां लिखने की कोशिश करता हूं. डा. राकेश जी काफ़ी खुश हुये. उन्होंने कहा "चलो कोई तो निकला लिखने पढ़ने वाला." उन्होंने मुझे अगले दिन शाम को चाय पीने के लिये अपने घर बुलाया और यह भी हिदायत दी कि जो कुछ भी लिखा है साथ में लेते आना. अब मेरी हालत खराब. अभी तक मैंने कोई कहानी तो क्या छोटी सी कविता नहीं लिखी थी. खैर, रात में जाग कर काफ़ी सोच विचार कर मैंने अपनी डायरी में एक कहानी लिख मारी.

आखिर सिर ओखली में तो मैंने ही डाला था. कहानी उस समय के अनुकूल थी. संक्षेप में कथानक ये था कि एक बेरोजगार बी.ए. पास युवक नौकरी की खोज में भाग कर बंबई (अब मुंबई) जाता है और काफ़ी असफ़लताएं झेलने के बाद एक दिन हत्या करके जेल पहुंच जाता है.

यूनिवर्सिटी के पास ही डा. राकेश जी का आवास था. अगले दिन मैं अपनी डायरी लेकर डा. राकेश जी के घर पहुंच गया. उन्होंने मेरे स्वागत का पूरा इंतज़ाम किया था. चाय,पकौड़ी,मिठाई. मैंने जम कर नाश्ता किया और चाय पी. फ़िर बारी आई कहानियों की. मैंने डरते-डरते डायरी उन्हें पकड़ा दी और चुपचाप बैठ गया. मन ही मन डर रहा था कि अब डांट पड़ेगी. पर राकेश जी ने तन्मयता के साथ दस-पन्द्रह मिनट में कहानी खत्म कर दी और मुझसे मुखातिब हुए-

“हां तो बाबू हेमंत कुमार जी, आगे क्या इरादा है?” डा. राकेश जी ने मुस्कुराकर पूछा.
“सर, आगे कम्पटीशन. और ये कहानी तो बस ऐसे ही... ” मेरी हालत खराब.
“कल ही लिखी है ना?”
“सर, क्या बताऊं. मैंने तो बस क्लास में वाह-वाही पाने के लिये कह दिया था, कभी कहानी लिखी नहीं थी, इसलिए कल रात जाग कर लिखी.” मैं लगभग हकलाते हुये बोला.
“बर्खुरदार, ये बताओ इतनी शानदार कहानी लिखी है तुमने और वो भी पहली कहानी और ऊपर से घबरा रहे हो? क्यों तुम कम्पटीशन देने के चक्कर में हो?कहानियां क्यों नहीं लिखते भाई?” डा. राकेश की बातों पर मुझे विश्वास नहीं हो रहा था. मैं अपलक उनकी ओर देख रहा था.

“देखो मैं ये नहीं कह रहा कि तुम कम्पटीटिव एक्जाम्स मत दो. तैयारी करो,पढ़ो लिखो लेकिन तुम एक अच्छे कहानीकार भी बन सकते हो. तुम्हारे पास शब्द, भाषा, विचार,भावनाएं सभी गुण हैं एक कहानीकार के. इसे ले जाओ थोड़ा और संशोधन करके युनिवर्सिटी की मैगज़ीन में दे देना.” कहकर उठते हुये उन्होंने मुझे डायरी पकड़ा दी.

मेरी वो कहानी “जंजीरें” यूनिवर्सिटी पत्रिका में तो छपी ही उसे यूनिवर्सिटी की ही एक कहानी प्रतियोगिता में पुरस्कार भी मिला. फ़िर तो मेरे पंख से लग गये. रोज एक नयी कहानी और डा. राकेश जी का साथ. एम.ए. फ़ाइनल में आने के पहले मेरा एक बाल कहानी संग्रह आ चुका था और मैंने इसी दिशा में आगे बढ़ना अपना लक्ष्य बना लियाथा.

मेरे दूसरे प्रेरक थे मेरे रिसर्च गाइड डा. रघुवंश. मैंने 1979 में रघुवंश जी के निर्देशन में रिसर्च ज्वाइन किया था. रघुवंश जी हाथों की दिक्कत (उनके हाथ बचपन से ही बहुत पतले और अंदर की ओर मुड़े हुए थे) के कारण अक्सर अपनी यात्राओं के दौरान मुझे सहायक के रूप में साथ ले जाते थे. मैं अक्सर यात्राओं के दौरान अपना भारी सामान खुद उठाने के बजाए कुलियों के भरोसे रहता था क्योंकि मुझे लगता था कि जब यू.जी.सी. वाले पैसा दे रहे हैं तो अपना सामान मैं क्यों उठाऊं? पर रघुवंश जी के साथ की गयी एक यात्रा ने इस मामले में मेरी विचारधारा ही बदल दी.

मुझे रघुवंश जी के साथ इलाहाबाद से गोरखपुर किसी सेमिनार में जाना था. उन दिनों भटनी से आगे की यात्रा छोटी लाइन (नैरो गेज) की ट्रेन से होती थी. ट्रेन बदलने हमें दूसरे प्लेटफ़ार्म पर जाना था. सिर्फ़ दो मिनट थे ट्रेन छूटने में. कुली दिख नहीं रहे थे.

मैंने कहा सर ट्रेन छूट जाएगी क्या? रघुवंश जी ने कहा "अरे! ऐसे कैसे छूटेगी ट्रेन, अभी देखो." और अपने मुड़े हुये हाथों में ही एक में बैग और एक में छोटी अटैची उठा कर रघुवंश जी दौड़ पड़े दूसरे प्लेटफ़ार्म की ओर. उनकी इस हिम्मत और जज्बे को देख मुझे खुद पर बड़ी शर्म आयी. एक वृद्ध और हाथों से अशक्त व्यक्ति मेरे सामने सामान उठा कर दौड़ रहा और मैं कुली का इंतज़ार कर रहा हूं." मैंने खुद को धिक्कारा और जल्दी से मैं भी पीछे-पीछे दो भारी वाली अटैचियां लेकर दौड़ा और अंततः हमें गाड़ी मिल गयी. उसी दिन से मैंने निर्णय किया कि अपने सारे काम खुद करूंगा, किसी के भरोसे नहीं रहूंगा.

वो दिन था और आज का दिन, मैं यथा संभव अपने सारे काम खुद ही करने की कोशिश करता हूं. यहां तक कि अपने घर का फ़्लश, बेसिन तक खुद साफ़ करता हूं और इससे मुझे जो आत्म संतोष मिलता है उसे मैं शब्दों में नहीं व्यक्त कर सकता.
मैं आज जो कुछ भी हूं उसके प्रेरक आदरणीय डा.राकेश चतुर्वेदी और डा. रघुवंश जी दोनों ही लोग अब इस दुनिया में नहीं हैं लेकिन उनके द्वारा दी गयी सीखें आज भी मुझे प्रेरणा देती हैं. दोनों ही गुरुओं को मेरा हार्दिक नमन और अभिनंदन.

मैडम, मैं वही कमलेश्वर हूं

कमलेश्वर

जब मैंने भारतीय दूरदर्शन के एडीशनल डायरेक्टर जनरल (प्रोग्राम) के रूप में काम संभाला तो इंदिरा गांधी ने विशेष तौर पर मुझे दस मिनट मिलने का समय दिया था.

मैं उनसे निर्देश लेकर कार्यभार संभालना बेहतर समझता था. इस पर उन्होंने कहा था- "आप देखिए और तय कीजिए कि अपने देश में लोकतंत्र जीवित रहे. मेरे ऊपर आपातकाल लगाकर लोकतंत्र को बाधित करने का बड़ा इल्ज़ाम है, लेकिन वह मेरी मजबूरी थी क्योंकि जयप्रकाश जी के साथ हिंदू सांप्रदायिक ताकतें शामिल हो गई थीं. संजय की वजह से कुछ ग़लतियां -ज़्यादतियां हुईं, वह पार्टीशन के बाद की नाज़ुक सच्चाइयों को नहीं समझता था.

चलते-चलते मैंने उन्हें बताया, "मैडम, मैं वही कमलेश्वर हूं जिसने 'आंधी' फ़िल्म लिखी थी, इसलिए आपको मेरे बारे में कोई ग़लतफ़हमी नहीं होनी चाहिए. इससे पहले की कोई आपको मेरे बारे में बतलाए, मैंने यह बता देना अपना कर्त्तव्य समझा."

उन्होंने कहा, "डेमोक्रेसी में ज़िम्मेदाराना मतभेद भी होता है, उसको सुनना ज़रूरी है, अब आपके दूरदर्शन के मतभेद को भी मैं सुनूंगी. आप जाइए, ज्वाइन कीजिए और अपने को बात कहने के लिए आज़ाद समझिए."

सैंया जी में सब रंग बेहतर

(लोक गीत की गद्य स्मृति. शायद हरियाणवी भाषा का लोकगीत एक मित्र ने गाकर सुनाया था. उसी गीत की गद्य-स्मृति है ये)

गीत चतुर्वेदी

उसके दरवाज़े पर एक चुड़िहार आया.
उसने लाल चूड़ियां देखीं और बोली, 'मेरे सैंया जी जब पान खाते हैं तो उनके होंठों का रंग लाल हो जाता है. उससे अच्छा लाल रंग कहीं नहीं हो सकता. दूसरे रंग की चूड़ियां दिखाना.'

अगले दिन चुड़िहार ने नीली चूडियां दिखाईं. उसने कहा, 'मेरे सैंया जी की आंखें नीली हैं. उससे बेहतर नीला रंग कोई और हो ही नहीं सकता. कोई दूसरा रंग दिखाओ.'
अगले दिन चुड़िहार ने हरी चूडियां दिखाईं. उसने कहा, 'काम से लौटने के बाद जब वह मुझे देखते हैं, तो ख़ुशी से उनके चेहरा हरा हो उठता है. उससे बेहतर हरा रंग कोई और नहीं. कोई दूसरा रंग लाओ.'

चुड़िहार रोज़ उसके दरवाज़े आता, रोज़ नए रंग की चूड़ी दिखाता और उस रंग को वह ख़ारिज कर देती कि उसके सैंया जी में वह रंग इससे बेहतर बसता है.

रोज़ दरवाज़े पर चुड़िहार के साथ उसे बतियाता देख घरवालों को संदेह हुआ कि चुड़िहार के साथ उसका कोई चक्कर है. भयंकर झगड़ा करने के बाद सैंया जी ने ही उसके पेट में चाक़ू घोंप दिया.

जाने कितने बरसों से वह हाथों से अपना घाव दबाए यह गीत गाती है और अपनी कथा सुनाती है.

जुहो? जुहो? जुहो ?

प्रीता व्यास

जुहो का अर्थ है जाऊं. भारत में, पहाड़ों पर एक चिड़िया होती है जो करुण से स्वर में कूकती है, मानो पूछ रही हो- जुहो? जुहो? जुहो? (जाऊं? जाऊं ? जाऊं?) इसे लेकर कूर्मांचल में एक लोक कथा भी प्रचलित है. कूर्मांचल एक तरह से हिमालय का द्वार है.

कहते हैं कि किसी ज़माने में एक बड़ी सुंदर लड़की थी जो झरनों के संगीत, पेड़ों की सरर- सरर तान और घाटियों की प्रतिध्वनियों पर पली थी. फूलों भरी वादियों में, मेमनों के पीछे दौड़ती-भागती, बर्फीली सर्दी में सूरज सा उजास फैलाती, गुलाबी गालों वाली सुंदर लड़की.

पिता गरीब था और किसी लाचारी में उसने अपनी बेटी का विवाह सपाट मैदानों में कर दिया कहीं. जहां ना चश्मे, ना बुग्याल. ना पहाड़, ना बर्फ. सूर्य उत्तरायण हुआ और गर्मी के तेवर कड़े हुए, धधकती धरती और जलाती लू ने उसे व्याकुल कर दिया.
उसकी हालत ख़राब होती जा रही थी. अंत में उसने हिम्मत कर अपने पिता के घर जाने की इच्छा व्यक्त करते हुए अपनी सास से पूछा- "जुहो" (जाऊं?) और सास ने उत्तर दिया- "भोल जाला" (यानी कल जाना). अगले दिन उसने अधीरता से फिर पूछा- "जुहो" और सास ने फिर कहा- "भोल जाला."

इसी तरह तीन-चार दिन बीत गए. फिर किसी ने उसका मृत शरीर एक पेड़ से टिका पाया.
कहते हैं इस घटना के बाद उस लड़की के प्राण चिड़िया बन गए जो अपने नन्हे-नन्हे पंख फैलाकर कूर्मांचल की ओर उड़ गई. पहाड़ों पर करुण स्वर में अब भी ये कूकती है, जैसे पूछती हो- जुहो? जुहो? जुहो? और फिर खामोश हो जाती है.

समय काटे नहीं कटता

डॉ. मुकेश असीमित

दो तरह के लोग होते हैं. एक वो, जिनके पास समय ही नहीं है काटने को, और एक वो, जिनके पास समय की फसल हमेशां लहलहाती रहती है, बस काटना ही तो है उसे. जिनके पास समय नहीं है, वो सूने, बंजर खेत से दीन-हीन बस भागते-दौड़ते रहते हैं, अगर समय मिले तो इसे काटें. दांतरी हाथ में लिए समय को ढूंढ रहे हैं, समय है कि मिलता ही नहीं. भाग रहे हैं बदहवास से, न खा रहे, न पी रहे, न सो रहे, बस दिन भर दौड़ लगा रहे हैं ऑफिस से घर, घर से ऑफिस, घड़ी की सुई को गरियाते हुए. हर जगह समय के पीछे दांतरी लेकर बस मिल जाए तो उसका गला पकड़कर रेत देंगे, पटखनी दे देंगे. ये अक्सर कहते रहते हैं कि समय काटने का हुनर है इनके पास लेकिन समय मिले तो. ये उन्हें देखकर बड़े दुखी होते हैं जिनके पास समय ही समय है पर काटना नहीं आता. हिकारत भरी नज़रों से देखते हैं, तिरस्कृत सी उपहास भरी नजरों से- "यार, आपको खूब मिल जाता है समय, बताओ ऐसा फ्री समय, फोकट का, यहां तो सुबह से शाम तक ढूंढो, मिलता ही नहीं."

तो ये वो लोग हैं जिनके पास समय है, चुनावी रेवड़ियों की तरह भरपूर, लेकिन काटना नहीं आया कैसे काटें, इसी से परेशान हैं. ये समय लेकर आपके पास आते हैं. आप हैं कि धड़ाधड़ समय काट रहे हैं, और आपकी दांतरी को तीखी नज़रों से देख रहे हैं. बैठ गए आपके सामने, पटक दिया अपना समय भी आपके पास, "लो, हमारा भी काट दो."

मैंने कहा, "यार, आपका समय है, आप खुद ही काटो."

बोले, "नहीं, मुझसे नहीं कटता यार."

ये रिटायर हो गए हैं. जब नौकरी में थे तो समय ऐसे काटते थे कि पूछो मत. मेरी एक फाइल अटकी थी इनके पास, मुझे दो महीने तक इनके ऑफिस में समय काटने का मौका मिला. घंटों बैठाए रहते. चाय-पानी, देश-विदेश की बातें, गली-मोहल्ले की, अपने दुश्मनों के काले-पीले कारनामे मेरे सामने रख देते. मेरे समय को बस एक नज़र मारते जैसे क्या पिद्दी सा समय था मेरा. यार मेरे समय का तो जैसे कोई मोल ही नहीं. न जाने कितने मेरे जैसे इनके ऑफिस के चक्कर काटते रहते.

ये और भी समय काटते, लेकिन हमने मालूम किया इनका रेट. इनके करीब के रिश्तेदार से इनकी दांतरी को रिश्वत का सिंदूर लगाया, तब जाकर इनकी दांतरी शांत हुई और मेरा समय काटना बंद किया. लेकिन दूसरों का समय काटते-काटते खुद का समय पड़ा-पड़ा सड़ जाएगा, ये इन्होने कभी सोचा ही नहीं. इन्हें लगा कि खुद के समय का क्या है, कभी भी काट लेंगे. अब रिटायर हो गए तो पड़े हैं सभी के पीछे, "भाई, मेरा समय काटो."

बीवी से गुज़ारिश की, "चलो समय काटते हैं. घूमने चलें, शाम को चाय पर बैठें, सत्संग में चलें साथ, दो-चार संस्थाएं ज्वाइन कर लें."
लेकिन उनकी श्रीमती जी की समय काटने की अपनी फिलॉसफी है, जो उन्होंने बहुत पहले से इनके रिटायर होने के बाद ही प्लान कर रखी थी. उन्हें थैला पकड़ा दिया, "सब्ज़ी ले आओ, गमलों में पानी दे दो, गाय को रोटी दे दो, अखबार चाट लो."
फिर इन्होने सोचा चलो लेखनी की धार से कागज काले करके काटते हैं समय को, लेकिन देखा कि लोग इनसे कन्नी काटने लगे हैं. कोई इनकी कविता सुनने को तैयार नहीं. सब भागे जा रहे हैं अपने ही समय को कंधे पर लादे बस.

बच्चे सब बाहर नौकरी पर, घर में एक कुत्ता भी पाल लिया. लेकिन कुत्ते का भी अपना समय. वो उसे ही काटने में व्यस्त. पड़ोस की कुतिया के साथ समय काट रहा है. जो कभी इनके दफ्तर के चक्कर लगाते रहते थे अपना समय कटवाने के लिए, अब इनसे कन्नी काटने लगे हैं.
इन्हें पता नहीं कहां से मालूम पड़ गया कि मैं समय अच्छा काटता हूं, बस आ जाते हैं मेरे चैंबर में. मैं देख रहा हूं, जैसे ही आते हैं, अपना समय मेरे चैंबर में बिखेर देते हैं – मेरे ओपीडी के मरीजों में, स्टाफ में, दीवारों पर, मेरी अलमारी के पीछे लगे मोमेंटो में, टेबल पर बिछे हुए पर्चों, अखबारों में. ले आते हैं गली-मोहल्ले, देश-विदेश, रिश्तेदार, पड़ोसी, सभी की बातें. एक-एक कर कटवा रहे हैं मुझसे समय. समय है कि खत्म ही नहीं हो रहा. ऐसा नहीं है कि खुद का समय काट रहे हैं बल्कि मेरे समय काटने में भी मदद कर रहे हैं. मुफ्त की सलाह दे रहे हैं मेरे मरीजों को, "अरे, आप यहां कहां आ गए, इसके लिए तो देसी नुस्खा अपना लो, उस पहलवान के पास चले जाओ, अपना समय वहां कटवाओ, डॉक साहब को तो बस मेरा समय काटने दो."

चाय भी आ गई है. चाय की चुस्कियों के बीच उनका फोन भी आ गया है. फोन आते ही देखा, वो अपने समय को समेट रहे हैं, हड़बड़ी में. उनकी श्रीमती जी का फोन है. उड़ती सी बात मेरे कानों में भी पड़ गई है कि नातियों का स्कूल से आने का समय हो गया है, उन्हें बस से घर तक लाना है.

कुछ समय पड़ा रह गया उनका, कटे बिना.
मैंने कहा, "वो आप अपने बेटे की नौकरी के बारे में बता रहे थे, कुछ नया मामला हुआ क्या?"
"कल आता हूं, गर्ग साहब, अभी थोड़ी अर्जेंसी है."
तसल्ली दे गए हैं मुझे. कल फिर आएंगे. आखिर मैं हूं ना समय काटने में एक्सपर्ट.

सुविचार

आजादी का कोई अर्थ नहीं है यदि इसमें गलतियां करने की आजादी शामिल न हों.

-महात्मा गांधी

देश को नमन

विंध्यकोकिल भैयालाल व्यास

चंदन सा सुरभित तन तेरा सीधा सुथरा मन.
प्यारे देश हमारे तुझको बारम्बार नमन.

पूरब की लाली सा विकसित तेरा नित आदर्श है,
तिलक लगाता तुझको प्रतिदिन सूरज का उत्कर्ष है,
हर्ष-विषाद-तपस्या-सुख सब तेरे मन में एक हैं-
तेरे चरणों को सागर भी करता नित स्पर्श है,
शत-शत बार करें हम तेरी पद रज का वंदन.

तेरा स्वागत छह-छह ऋतुएं करतीं क्रम से, प्यार से,
गंगा-जमुना अर्घ्य चढ़ातीं अपनी अमृत धार से,
जलचर-थलचर-नभचर तेरे पाहुन पोषित प्रेम के-
जड़-चेतन सब तृप्त हुए हैं मां तेरी अनुहार से,
कोटि-कोटि हाथों से तेरा करते हम पूजन.

तेरी सेवा हेतु मात हम फिर-फिर जनम धरें,
उत्पादन के नव-नव श्रम से हर भंडार भरें,
हाथ पसारें नहीं किसी के आगे तेरे हाथ ये-
सौ-सौ बार जियें तेरे हित सौ-सौ बार मरें,
तन-मन-धन से बाल-युवा सब करते आराधन.

चंदन सा सुरभित तन तेरा सीधा सुथरा मन.
प्यारे देश हमारे तुझको बारम्बार नमन.

मजबूरी में

मोहन पुरी

मजबूरी ने कंधा पकड़ा जब-जब मन की कस्तूरी का,
गिरे हुए लोगों को हमने बहुत बड़ा किरदार बताया.

कुछ लफ़्ज़ों के सौदागर थे,
कुछ लफ़्ज़ों के बाजीगर थे,
इंच-इंच मक्कारी सीखे
कुछ लफ़्ज़ों के कारीगर थे,
दया और करुणा के फाहे होंठ काटकर बने बिचारे,
एक ठगी के विज्ञापन को सच्चों का अख़बार बताया.

थोड़ी सी खुरचन की खातिर,
बेच दिया आखिर अपने को,
नजराने पाने की खातिर
मार दिया अपने सपने को,
लंपट, व्याभिचारी देखे हाथ उन्हें भी हमने जोड़े,
जग में उन लोगों का हमने एक अलग मैयार बताया.

यूं तो सच के साथ रहे पर,
करी झूठ से गलबहियां भी,
दोरंगे, चौरंगे होकर
रख्खी ख़ुद में गुमरहियां भी,
रोने वाली बातों पर भी चुप होंठों से हंसना सीखा,
बटमारों को, हत्यारों को जनता का सरदार बताया.

मां

रोहित कृष्ण नंदन

इन शब्दों से क्या मैं मां का
प्रेम बयां कर पाऊंगा?
वो तो सागर है खुशियों का
अंजुरि भर लिख पाऊंगा.

उगते सूरज को सब अपनी
ओर बुलाना चाहते हैं
हम मां के वो दीपक हैं जो
सूरज से टकराते हैं,
रोज दुआ देती है वो हमको
झोली भर-भर के अपनी
मां की इन्हीं दुआओं से हम
आफताब बन छाते हैं,
ढाल गीत में प्रीत ये मां की
अंबर तक पहुंचाऊंगा,
वो तो सागर है खुशियों का
मुठ्ठी भर लिख पाऊंगा.

जिसको प्रीत है हासिल मां की
उसको सारा जहां मिला,
मां की इन्हीं दुआओं से इस
बंद भाग्य का द्वार खुला,
मां की नेह भरी ममता से
जीवन रूपी पुष्प खिला,
जिसके अधिकारी हम न थे
वो सब हमको आज मिला,
मां-बाबा के परिचय को
इस दुनिया भर में गाऊंगा.
वो तो सागर है खुशियों का
अंजुरि भर लिख पाऊंगा.

सतपाल ख़याल

(1)

मिली तो है हमें ख़ुशी कभी-कभी ज़रा-ज़रा.
भली लगी है ज़िन्दगी कभी–कभी ज़रा-ज़रा.
तमाम काम छोड़कर तेरी गली को चल दिए,
वहीं मिली हमें ख़ुशी कभी-कभी ज़रा-ज़रा.
तेरे ख़याल क्या कहूं हैं जुगनुओं के झुंड से,
सियाह रात रौशनी कभी-कभी ज़रा-ज़रा.
है आग के सफ़र में जो लबों पे मेरे तिश्नगी,
बुझी तो है मगर बुझी कभी–कभी ज़रा-ज़रा.
किसी फ़क़ीर की तरह ग़मों पे हंस दिए "ख़याल"
ग़मों से की है दिल-लगी कभी-कभी ज़रा-ज़रा.

(2)

बोल रहे हैं झूठे सारे सच का मारा क्या बोले?
हर इक तारा चाल चले है चांद बेचारा क्या बोले?
इतने लकड़हारों के आगे जंगल सारा क्या बोले?
सुनते रहे नीड़ों में पंछी चलता आरा क्या बोले?
दुनिया बोल रही है क्या-क्या ग़म का मारा क्या बोले?
क्या समझाए इस दुनिया को घर में हारा क्या बोले?
मैं चुप बैठा सोच रहा था अंबर सारा क्या बोले?
डूब रहा सूरज क्या बोले दूर किनारा क्या बोले?
छत ने ढक रक्खा था घर को बोल रही थी पर डियोड़ी?
क्या बोलीं दीवारें मुझ से और घर सारा क्या बोले?
छोड़ "ख़याल" गुमान उठो तुम याद करो अपना सांईं,
गाते जाते बंजारे का सुन इक तारा क्या बोले?

बलवान सिंह "आज़र"

(1)

किसी दिन दूसरा होना पड़ेगा.
मुझे अपने सिवा होना पड़ेगा.

तुम्हारे दिल को नफ़रत की तलब है,
कहीं और मुब्तला होना पड़ेगा.

बहुत दिन से यहां मैं अजनबी हूं ,
किसी से आशना होना पड़ेगा.

मैं काफ़िर हूं ये साबित करना है तो,
ख़ुदा से मावरा होना पड़ेगा.

मुहब्बत से नवाज़ेगें मुझे सब,
फ़क़त इक बावरा होना पड़ेगा.

(2)

जब कहीं मुस्कुराना पड़ता है.
आंसुओं को छुपाना पड़ता है.

फूल खिलने से कुछ नहीं होता,
ख़ुशबुओं को जगाना पड़ता है.

सांसों को फ़ुर्सतें नसीब नहीं,
सबको खाना -कमाना पड़ता है.

पांव उठते नहीं नशे में जब,
होश में ख़ुद को लाना पड़ता है.

रोज़ आती है गर्द गलियों की,
रोज़ घर को सजाना पड़ता है.

डॉ. प्रेम भटनेरी, आदिल फ़रहत

(1)

दिल तुमसे मुहब्बत की दुआ मांग रहा है.
ये बुझता दिया फिर से हवा मांग रहा है.
यूं रात के पर्दे पे है जुगनू की हुकूमत,
सूरज भी ज़मीनो से रिदा मांग रहा है.
वो आग लगाई है बहारों ने चमन में,
अहसास ही पतझड़ की कबा मांग रहा है.
बैठा है रक़ीबो की कमीगाह में फिर भी,
क्या शख्स है जो मुझसे वफ़ा मांग रहा है.
सर 'प्रेम' का कट जाये तो शिकवा न उसे हो,
दस्तार न गिरने की दुआ मांग रहा है.

- डॉ. प्रेम भटनेरी

(2)

सारे आलम का यही अरमान होना चाहिए.
तू नहीं तो ये जहां वीरान होना चाहिए.
इश्क़ में बस फ़ायदे अच्छे नहीं होते जनाब,
इश्क़ में थोड़ा बहुत नुक़सान होना चाहिए.
जिस्म को आग़ोश में लेते हो पर सोचा कभी,
रूह का भी कुछ सरो-सामान होना चाहिए.
इस दग़ाबाज़ी को कब तक इश्क़ में सहते रहें,
बेवफ़ाई का भी कुछ इम्कान होना चाहिए.
अब के इक महबूब ऐसा ढूंढिए 'फ़रहत' के जो,
ख़ूबसूरत हो न हो, नादान होना चाहिए.

- आदिल फ़रहत

ख़ुशबीर सिंह शाद

(1)

दिल में जो वलवले थे वो रूपोश कब हुए.
चुप तो करा दिए गये, ख़ामोश कब हुए.

तुम तो सितम से आंख मिलाते थे बेख़तर,
क्या मसलहत थी, ऐसे सितमकोश कब हुए.

तुमने हरेक हाल में रखा है फ़ासला,
ख़्वाबों में भी जो आये हम-आग़ोश कब हुए.

कहने को तुझसे तर्क मरासिम तो कर लिए,
फिर भी तिरी तरफ़ से सुबूकदोष कब हुए.

कुछ लोग जिनकी याद थी सरमाया उम्र का,
ये भी नहीं ख़बर कि फ़रामोश कब हए.

इक आलम ए सरूर था इतना तो याद है,
कब शाद हद वो पार की,मदहोश कब हुए.

(2)

मसअला तो अब ये है इस क़दर हैं फ़ुर्सत में.
वक़्त किस तरह काटें क़ैद ए बेमशक़्क़त में.

अब तो वो मनाज़िर भी खो चुके हैं दिलचस्पी,
कुछ इज़ाफ़ा करते थे जो नज़र की हैरत में.

ख़ुद शनास बस्ती में काम आई गुमनामी,
वरना खो के रह जाते हम भी अपनी शोहरत में.

ख़ामशी सदाओं से गर गुरेज़ करती हो,
क्यूं मुख़िल हो आवाज़ें ख़ामशी की ख़िल्वत में.

चाहते तो कर लेते जिस्म से रियाकारी,
दाग़दार हो जाता इश्क़ इस हिमाक़त में.

दश्त ए जां में ज़ाहिर है कुछ तो होने वाला है,
इस क़दर हो ख़ामोशी और इतनी वहशत में.

क्यूं भला कोई रुकता मेरे थक के रुकने पर,
वक़्त के मुसाफ़िर थे और सब थे उजलत में.

बेसबब नहीं मिलता कोई गर्मजोशी से,
कुछ मुआहदा तो है बाहमी रफ़ाक़त में.

'शाद' ऐसे जज़्बों की ज़िन्दगी ज़रूरी है,
सांस ले रहे हों जो बेहिसी की शिद्दत में.

पहेलियां

डॉ. कमलेन्द्र कुमार

1.

आओ प्यारे पास हमारे,
तुमको तुमसे ही मिलवाऊं
तीन वर्णों का नाम हमारा ,
मैं तो घर-घर पाया जाऊं.

2.

काठ, मोम, मिट्टी से बनता,
बच्चों का अति प्यारा.
रबड़, प्लास्टिक, कपड़े से बनता,
बोलो नाम हमारा?

3.

अनल, दहक, पावक कहलाती,
साथ ऊष्मा लाती.
दो वर्णों का नाम हमारा,
बोलो क्या कहलाती?

4.

देश, नगर और गांव हैं मुझमें,
और सागर हैं गहरे
नदिया, जंगल, घाटी, मुझमें,
और पर्वत बहुत सुनहरे.

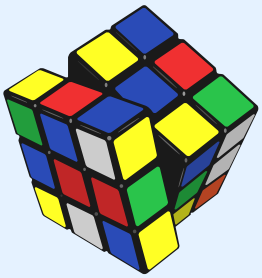

(उत्तर: 1-दर्पण, 2-खिलौना, 3-आग, 4-मानचित्र)

जवाहरलाल हाज़िर हो

(जेल की सलाखों के पीछे पंडित नेहरू के 3259 दिन)

समीक्षा: अनुज मिश्रा

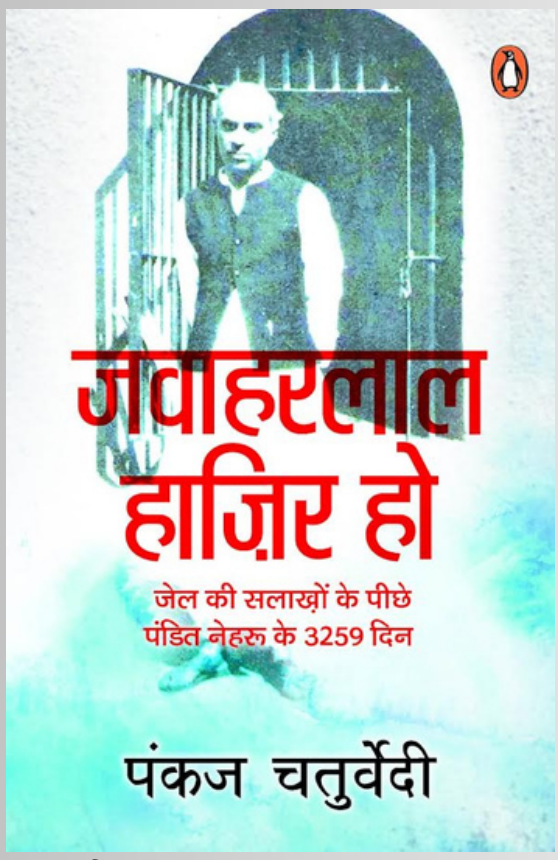

(लेखक: पंकज चतुर्वेदी, प्रकाशक: पेंगुइन रैंडम हाउस इंडिया (2024), पृष्ठ संख्या: 186, मूल्य: 299.00 रुपय, ISBN: 9780143470663)

यूं तो पंकज चतुर्वेदी प्रकृति और पर्यावरण क्षेत्र में जानी-मानी हस्ती हैं पर इतिहास पर लिखी उनकी पुस्तक जवाहरलाल हाज़िर हो भी कहीं से कम नहीं है. इस पुस्तक में सहजता के साथ-साथ प्रामाणिकता में भी कहीं कमी नहीं दिखी जो लेखक की लेखन-शैली को स्थापित करता है. यह पुस्तक नेहरू जी के 3259 दिनों की जेल यानी जीवन के सवा आठ साल के जेल यात्रा का चित्रात्मक विवरण तो है ही जो अदालती कार्यों के दस्तावेज पर आधारित है पर यह स्वतंत्रता संग्राम

का एक महत्वपूर्ण विवरण भी देता है. खास बात इस पुस्तक की ये है की नेहरू पर चलाए गए नौ मुकदमों का प्रामाणिक, रोचक और चित्रात्मक वर्णन तो है ही जिसमें नेहरू साहस और दृढ़ता से ब्रिटिश न्याय व्यवस्था की धज्जियां उड़ाते भी दिखते हैं. जब-जब ब्रिटिश मजिस्ट्रेट उनसे सफाई देने के लिए कहता है उनका

उत्तर एक ही होता है: 'आपकी न्याय व्यवस्था में मुझे कोई विश्वास ही नहीं है'. सफाई में अंग्रेजी व्यवस्था कोई हेरफेर न कर दे इस से बचने के लिए नेहरू लिखित बयान पेश करने की अनुमति मांगते हैं. लेखक ने काफी शोध करके नेहरू के अदालत में दिए गए लिखित बयान को जस का तस इस पुस्तक में पेश किया है जो उनके तेवर, भारत दर्शन और भारत की आजादी पर उनके समर्पण को बताता है.

एक और खासियत इस किताब की ये है कि इस पुस्तक से गुजरते ऐसा महसूस होता है कि सिर्फ़ काल और परिवेश बदला है पारिस्थिति सात दशक बाद भी वैसी ही है. कई जगहों पर तो ऐसा प्रतीत होता है जैसे ये बात आज के हालात पर की गई टिप्पणी हो चाहे वो किसान आंदोलन का मामला हो या अभिव्यक्ति की आज़ादी. "बुराई के साथ कोई समझौता या बातचीत नहीं हो सकती, यह संघर्ष लोगों की पूर्ण जीत के साथ ही समाप्त होना चाहिए और हो सकता है" नेहरू जी का यह वक्तव्य आज भी उतना ही सार्थक है. इस पुस्तक ने नेहरू के विचार को पुनः प्रासंगिक कर दिया जब वह कहते हैं कि "हम अपने बोलने के हक़ को किसी भी क़ीमत पर छीनने नहीं देंगे....किसी भी क़ीमत पर अपने बोलने की आज़ादी के अधिकार को कभी नहीं छोड़ सकते."

नेहरू के ऐसे विचार काल, स्थान और परिवेश के परे दिखता है मानो 1921 में काही बात आज भी उतना ही सटीक बैठती है कि "सरकार ने भय, दबाव और आतंक को अपना मुख्य हथियार बना लिया है, जिससे देश के लोगों का दमन हो रहा है, उनकी भावनाओं को कुचला जा रहा है." जवाहरलाल हाज़िर हो पुस्तक आज के समय, समाज और प्रशासन की प्रतिकृति हो. लेखक ने नेहरू की भारत की स्वतंत्रता आंदोलन में पूरे परिवार पिता वकील मोतीलाल नेहरू और अपनी पुत्री इंदिरा समेत उनकी भागीदारी और उन सब पर जेल में हुए मानसिक और शारीरिक यातनाओं का भी संवेदनशीलता चित्रण किया है. इस चित्रण के जरिए ये भी बताना मकसद था कि जो भी अंग्रेजी शासन तंत्र के अस्तित्व को चुनौती देता उसका यही हश्र होगा. साथ ही, ये पुस्तक यह भी बताती है कि कठोर से कठोर यातनाएं भी नेहरू के जज्बे को तोड़ नहीं सकीं बल्कि हर यातना ने उनके आज़ादी के संकल्प को और मजबूत किया.

आज सोशल मीडिया पर नेहरू के खिलाफ तमाम अनर्गल बातें कही जाती है. इस पुस्तक में जिस व्यक्ति पर भोग-विलास और सुविधा संपन्न का आरोप लगता है वह कैसे सवा आठ साल तक ब्रिटिश जेलों में (कई बार तो सामान्य कैदी के तौर पर) काटता है, का भी विस्तृत विवरण है जिसमें काल कोठारी में बंद नेहरू पर चूहे का उछल कूद मचाना, उन्हें कैसे हथकड़ी लगाई गईं और उनके ऊपर बदसलूकी का भी जिक्र है.

इस पुस्तक में नेहरू के पारिवारिक संकट, पत्नी की गंभीर बीमारी और बेटी इंदिरा के अंतरधार्मिक विवाह, जो तब सामाजिक अपवाद ही था, बावजूद भारत के स्वतंत्रता संग्राम के लौ को कमने नहीं दिया का भी वर्णन है. यह पुस्तक सर्वथा प्रासंगिक रहेगी. इनकी कई वजहें हैं:

1) मुकदमों की विस्तृत जानकारी देने के साथ-साथ ये वर्तमान राजनीतिक स्थिति पर भी प्रकाश डालती है.

2) हालांकि पुस्तक का मूल स्रोत अंग्रेजी है पर इसका अनुवाद पुस्तक के विषय-वस्तु को कहीं से भी कमजोर करता नहीं प्रतीत होता है.

3) हालांकि प्रथमदृष्टा लगता है की ये पुस्तक कांग्रेस-समर्थित विचार-धारा से प्रेरित है पर दरअसल ऐसा है नहीं.

4) यह पुस्तक दो तरह के लोगों द्वारा अवश्य पढ़ी जानी चाहिए: नेहरू के प्रशंसक तो पढ़ेंगे ही पर उनसे भी ज्यादा आवश्यक है तटस्थ विचाए रखने वालों द्वारा इसका पढ़ा जाना. ऐसा इसलिए कि जब नेहरू पर विलासिता और अकर्मण्यता के राजनीति से प्रेरित आरोप लगते हैं तो उसका सच्चाई से तर्कों के आधार पर न केवल सत्य को स्थापित किया जा सके बल्कि व्हाट्सएप यूनिवर्सिटी का डट कर मुकाबला किया जा सके. अगर तटस्थ विचार रखने वालों में थोड़ी भी तार्किकता और संवेदनशीलता बची होगी तो यह पुस्तक उनकी आंखें खोल देगी.

5) अगर ये पुस्तक नेहरू के साथ जेल की सजा काट रहे लोगों के नेहरू पर विचारों को शामिल करती तो शायद यह पुस्तक और भी रोचक हो जाती.

हिंदी त्रैमासिक
पहचान
देश से हम, हमसे देश

रचना आमंत्रण

अंतर्राष्ट्रीय, हिंदी त्रैमासिक ऑन लाइन पत्रिका ''पहचान'' हेतु आप भी रचनाएं भेज सकते हैं.

आलेख, समीक्षा, साक्षात्कार, शोध परक लेख, व्यंग्य, संस्मरण, यात्रा वृत्तांत, लोक साहित्य, बाल साहित्य, कविता, गीत, कहानी, लघु कथा आस्था, धरोहर, इतिहास, कला, विज्ञान, स्वास्थ्य आदि साहित्य की सभी विधाओं में रचनाओं का स्वागत है.

रचनाएं वर्ड फाइल में अपनी तस्वीर और परिचय सहित भेजें. लेख के लिए 800 से 1,000 और कहानी के लिए अधिकतम शब्द सीमा 1600 शब्द है.

यदि आप अपना खींचा कोई चित्र पत्रिका के कवर पेज या फिर तिमाही चित्र चयन के लिए विचारार्थ भेजना चाहें तो अपने परिचय के साथ चित्र के बारे में बताते हुए ई – मेल कर सकते हैं.

संपादक मंडल का निर्णय अंतिम निर्णय होगा, इसमें विवाद की गुंजाईश नहीं होगी.

editor@pehachaan.com